संपादकीय

'पूछत दीनदयाल को धाम...'

पंडित दीनदयाल उपाध्याय आज दैहिक रूप में नहीं भी हैं, तब भी अमूर्ततः सौ साल के तो हैं ही। उन्होंने हित-मित्रों के साथ मिलकर भारतीय जनसंघ रूपी विचार व संगठन की जो पौध लगाई थी, वह आज भारतीय जनता पार्टी के रूप में विशालकाय वटवृक्ष का आकार ग्रहण कर केन्द्र में सत्तारूढ़ है और कई राज्यों में बरसों से उसकी सरकारें लगातार चल रही हैं। ध्यातव्य है कि डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी के नेतृत्व में २१ अक्टूबर, १९५१ ई. में अखिल भारतीय जनसंघ की स्थापना से ठीक एक महीना पहले दीनदयाल उपाध्याय ने लखनऊ में प्रादेशिक सम्मेलन बुलाकर उसकी उत्तर प्रदेश इकाई का गठन करा दिया था। इस प्रकार प्रांतीय स्तर पर जनसंघ का अस्तित्व पहले सामने आया, राष्ट्रीय स्तर पर बाद में। बहरहाल, यह देखना प्रासंगिक है कि उनके विचारों के जीवित-मूर्तमान प्रतिरूप में जो विस्तारित भाजपा आज है, उसमें वे कहाँ और कितना हैं? स्वयं दीनदयाल जी होते तो वे भी अपने नाम पर खड़े विशाल प्रासाद में अपनी प्रतिमा-तस्वीर की उपस्थिति के अतिरिक्त मन व कार्य-व्यवहार के स्तर पर अपनी स्थिति का आकलन करना ही उचित समझते। यहीं कवि नरोत्तम दास भी याद आते हैं, जिन्होंने श्रीकृष्ण के महल के द्वार पर खड़े, उन्हीं के भवन के बारे में पूछते सुदामा की दशा का बड़ा ही कारुणिक चित्र उकेरा है -'पूछत दीनदयाल को धाम, बतावत आपनो नाम सुदामा।'

अस्तु, यह प्रश्न इसलिए भी उपस्थित है, क्योंकि पंडित जी के सहयोगी रहे भाजपा के शीर्ष नेता-कार्यकर्ता गाहे-बेगाहे ऐसे प्रश्न उठाते रहे हैं। वरिष्ठ भाजपा नेता श्री लाल कृष्ण आडवाणी ने कुछ समय पहले ऐसा ही कुछ कहकर भारी मन से पार्टी से इस्तीफा तक दे दिया था -'प्रिय राजनाथ जी, क्या यह वही भाजपा है, जिसका निर्माण हम सबों ने बरसों पहले किया था?' पार्टी से नाराज लोग ऐसे प्रश्न उठाते रहे हैं, जिन्हें व्यक्तिगत स्वार्थों की लड़ाई कहके खारिज कर देना हमेशा उचित नहीं लगता। आडवाणी जी ऐसे नेताओं में से हैं, जिन्होंने दीनदयाल उपाध्याय के साथ काम करते हुए बड़े अनुभव इकट्ठे किए। वे अपने भाषणों में उनसे जुड़े संस्मरण सुनाते रहे हैं कि उन दिनों अखबारों में छपी तस्वीरों में दीनदयाल जी बेहद साधारण व्यक्ति प्रतीत होते थे। उन्हें दूर से देखने पर लगता था कि कोई बिल्कुल सामान्य आदमी है, लेकिन जब कभी नजदीक जाकर उनसे मिलना होता था, तब लगता था कि ये आदमी तो बहुत बड़ा है। दूर से वे जितने साधारण लगते थे, निकट से वे उतने ही असाधारण होने का एहसास कराते थे और यह सब प्रयत्नपूर्वक नहीं होता था। उस समय सामान्य नेता-लोगों में अपने चेहरे व सौंदर्य को लेकर आजकल जैसी सजगता थी भी नहीं। तब दूरदर्शन की इतनी व्याप्ति भी कहाँ थी। अभिजात्य, संपन्न व कुछ रईस टाईप नेता ही अपने सौन्दर्य के प्रति सचेत थे। ज्यादा पुराना नहीं, दो दशक पहले का ही एक वाकया इसकी पुष्टि के लिए काफी है। भारतीय जनता पार्टी के पदाधिकारियों की बैठक की शुरुआत में पत्रकारों ने फोटो खीचना आरंभ किया, क्योंकि बैठक के दौरान मीडिया को रहने की इजाजत नहीं होती। तब वाजपेयी जी, आडवाणी जी, जोशी जी, सिकंदर बख्त जी, विजयाराजे सिंधिया जी आदि फोटो खिंचवाने से पहले, जैसा कि अनेक बार होता है, मुस्कराने लगे तो किसी पत्रकार ने तुरंत पूछ दिया कि आप लोगों की हँसी देखकर लगता है कि आप सबों के बीच के मनमुटाव खत्म हो चुके हैं? दीनदयाल जी के क्लास-साथी रहे भंडारी जी कम हँसते थे, बनावटी हँसी का सवाल ही नहीं था। और लोग चुप रह भी जाएँ, पर हाजिरजवाब वाजपेयी जी कहाँ चुकने वाले थे, उन्होंने तपाक से कहा कि आपका प्रश्न वैसे ही है जैसे कोई मुझसे पूछे कि क्या आजकल मैंने अपनी बीवी को पीटना छोड़ दिया है? यदि मैं हाँ कहूँ तो आप कहेंगे कि ठीक है आजकल छोड़ दिया होगा, पर पहले तो खूब पीटते थे और यदि मैं ना कहूँ तो आप कहेंगे कि पहले तो पीटते ही थे, अभी भी पीट रहे है; जबकि वास्तविकता यह है कि बीवी नाम की कोई चीज मेरे पास है ही नहीं। जब जहाँ बीवी ही न हो, तब वहाँ उसके साथ मारपीट का सवाल ही कहाँ उत्पन्न होता है। तात्पर्य यह कि दीनदयाल उपाध्याय अकृत्रिम रूप में इतने नम्र-विनत और सरल भाव से अपने लक्ष्य के प्रति निष्ठावान थे कि उनकी महानता को पहचान लेना आसान न था और इसी कारण उनका असमय इंतकाल भी हुआ। पठानकोट-सियालदह एक्सप्रेस से पटना जाते वक्त रात्रि में रेल में साजिश के तहत उन्हें मार दिया गया। क्षतिग्रस्त लाश मुगलसराय रेलवे स्टेशन के अहाते के भीतर स्टेशन-केन्द्र से महज १५० मीटर दूर प्लेटफार्म पर ११ फरवरी, १९६८ की सुबह नौ बजे तक लावारिस ही रही। क्या महज संयोग था कि पंडित जी के पिता रेलवे में सहायक स्टेशन मास्टर, नाना स्टेशन मास्टर, पंडित जी का जन्म-स्थान नाना को मिला धनकिया-राजस्थान का रेलवे क्वार्टर, पालन-पोषण रेलवे में कार्यरत नाना के घर तथा मृत्यु रेलवे स्टेशन पर हुई? जन्म और मरण पर आदमी का वश नहीं चलता, वह रेल से सन्नद्ध रहा, अचेतन दीनदयाल उपाध्याय का रेलवे से ऐसा नाता क्यों?

२५ सितंबर, १९१६ ई. को जन्मे पंडित जी ५२ वर्ष के जीवनकाल में विचारों की एक लंबी श्रृंखला तैयार कर अपने पीछे छोड़ गए। जीवन जगत के बिल्कुल तात्कालिक-से दिखने वाले मुद्दों की बुनियाद तराश-तराश कर, उस पर स्थायी सिद्धांतों की आधारशिला रखने के साथ ही चिरंतन जीवन मूल्यों की तात्कालिक परिवेश में सार्थकता सिद्ध करने का कार्य किया -''स्वतंत्रता स्वयं साध्य नहीं, साधन है। जिस प्रकार प्राणों का स्पंदन ही जीवन नहीं, वैसे ही स्वराज्य ही संपूर्ण राष्ट्र का रूप नहीं है। राष्ट्रों के जीवन में भी स्वराज्य एक साधन ही है; एक ऐसी स्थिति है, जिसमें वह निर्बाध रूप से अपने विवेक के अनुसार निश्चित ध्येय की ओर बढ़ सकता है।'' जिन दिनों वे कांग्रेस के विरुद्ध वैकल्पिक राजनीति की रूपरेखा बना रहे थे, उन दिनों यह बड़ा दुस्साहस जैसा ही था। लेकिन वे अंग्रेजी सत्ता का विकल्प कांग्रेस में और कांग्रेस का विकल्प जनसंघ के रूप में नहीं सुझा रहे थे, बल्कि सत्ता से पहले वैकल्पिक नीतियों-कार्यक्रमों, आचार-व्यवहारों के लिए संपूर्ण दर्शन व समग्र क्रियान्वयन का दीर्घकालिक सुदृढ़ आधार बनाने का प्रयास

कर रहे थे। इसके लिए वे एक तरफ चिंतन-मनन कर रहे थे, तो दूसरी तरफ संगठन का ढाँचा निर्मित कर रहे थे। दूसरे शब्दों में, वे सत्ता की संभावना नहीं, बल्कि् संभावनाओं का बेहतर विकल्प तलाश रहे थे।

'राष्ट्रधर्म' मासिक, 'पांचजन्य' साप्ताहिक, 'स्वदेश' दैनिक के प्रकाशन व संपादन के माध्यम से उन्होंने स्थापित किया कि भारत की राजनीति का विचार उसकी संस्कृति व जीवन दर्शन से अलग हटकर कदापि नहीं हो सकता। इसी कारण उन्होंने 'चंद्रगुप्त' नाटक तथा आदि शंकराचार्य की जीवनी का प्रणयन किया; भारतीय संस्कृति, धर्म-दर्शन, मानववाद, अर्थव्यवस्था एवं आर्थिक योजनाओं पर बेबाक विचार व्यक्त किए। हिन्दुत्व को भारत की आत्मा तथा आध्यात्मिकता को जीवन के लिए जरूरी बताते हुए कहा -''भारतीय संस्कृति एकात्मवादी है। सृष्टि की विभिन्न सत्ताओं तथा जीवन के विभिन्न अंगों के दृश्य-भेद स्वीकार करते हुए भी, वह उसमें अंतर्निहित एकता की खोज कर उनमें समन्वय की स्थापना करती है। समष्टि के साथ एकात्मकता ही व्यक्ति की पूर्ण विकसित अवस्था है।'' गीता में भी स्वयं में सबको और सबमें स्वयं को देखने को आत्मिक उन्नति का लक्षण बताया गया है।

दीनदयाल उपाध्याय के अनुसार, व्यक्ति ही समष्टि की पूर्णता का माध्यम व माप है। समग्रता से संपूर्णता में मनुष्य जीवन का पूरी सृष्टि के साथ एकसाथ लयात्मक विचार एकात्मकता है और यह दर्शन एकात्मवादी है। समस्याओं को टुकड़ों-टुकड़ों में बाँटकर देखना विशेषज्ञ की दृष्टि से उपयुक्त होकर भी व्यावहारिक समाधान की दृष्टि से यथोचित नहीं है। सभी मनुष्यों के शरीर, मन, बुद्धि व आत्मा के समुच्चय व संयुक्त विकास का लक्ष्य प्रतिपादित करते हुए उन्होंने माना कि अपनी प्रकृति, स्वभाव, प्रतिभा के अनुसार कार्य करने की सुविधा न रहने पर किसी तरह की प्रगति की बात बहुत दूर, आदमी पतनोन्मुख होता है। आर्थिक शक्ति संसाधनों का सुदूर गाँवों-कस्बों तक विकेन्द्रीकरण तथा मनुष्य, श्रम व मशीन के परस्पर पूरक उपयोग से अर्थव्यवस्था का उद्देश्य पूरा होता है। अंत्योदय के संकल्प द्वारा सबसे निचले पायदान पर खड़े आदमी तक विकास की बयार पहुँचाना आर्थिक व्यवस्था का चरम लक्ष्य होना चाहिए। मनुष्य की प्रकृत भावनाओं को संस्कारित करके उनमें अधिकाधिक उत्पादन, समान वितरण तथा संयत उपभोग की प्रवृति पैदा करना आर्थिक क्षेत्र में संस्कृति का कार्य है।

दूरदर्शी दीनदयाल उपाध्याय को यह तभी आभास हो गया था कि समुचित शिक्षा, प्रशिक्षण, योग्यता व कर्तव्यनिष्ठा के अभाव में अधिकांश सरकारी कार्यक्रम ऊपरी परिवर्तन की घोषणा मात्र बन कर रह जाते हैं; इसलिए संस्थागत परिवर्तन के स्थान पर अंतर्मन व कार्य-पद्धति के स्तर पर परिवर्तन पर जोर दिया। वे पूंजीवाद, समाजवाद और साम्यवाद को 'वाद' के स्तर पर अपूर्ण तथा व्यवहार के स्तर पर अपनी कथनी के प्रतिकूल आचरण वाला मानते थे -''मनुष्य की तरह-तरह की प्रवृतियों के बीच समुचित सामंजस्य बिठाकर व्यक्तित्व विकास करने की बजाय समाजवाद और लोकतंत्र ने भ्रमपूर्ण स्थिति पैदा कर विभिन्न शक्तियों के लिए एक रणक्षेत्र तैयार कर दिया है।'' समाधानस्वरूप, प्राचीन परंपरा से विकास के सूत्र ढूँढ़ लाने के लिए वे अतत्पर थे। उन्होंने क्रांतिकारी घोषणा की कि 'संपत्ति का कोई भी अधिकार समाजनिरपेक्ष नहीं हो सकता।'

एक आदर्श स्वयंसेवक के गुणों से आच्छादित दीनदयाल उपाध्याय अपने जीवनकाल में भारतीय जनसंघ की रीढ़ बने रहे। अध्यक्ष तो उन्हें दिसंबर, १९६७ ई. में चुना गया, जिस पद पर दो महीने भी नहीं रह पाए, जबकि महामंत्री लगभग सोलह साल तक रहे। कालीकट अधिवेशन में अध्यक्ष निर्वाचित होने पर उन्होंने घोषणा की थी कि 'हमने किसी एक वर्ग या संप्रदाय की सेवा का नहीं, बल्कि संपूर्ण राष्ट्र की सेवा का व्रत लिया है। सभी देशवासी हमारे बांधव हैं।' इसके महज ४९ दिन के भीतर उनकी हत्या किसी अपने ही बांधव ने कर दी; बेशक अपने विचारों की शक्ल में वे आज भी अक्षुण्ण हैं।

शुरुआती दिनों में ही डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी ने उन पर अप्रतिम विश्वास व्यक्त किया था कि 'यदि मेरे पास दो दीनदयाल हों तो मैं भारत की राजनीति का चेहरा बदल दूँगा,' पर दुर्भाग्य से एक दीनदयाल भी अधिक दिन तक न रह सके। आखिर कौन-सा ऐसा गुण था, जिसकी वजह से डॉ. मुखर्जी को उन पर इतना भरोसा था। वस्तुतः दीनदयाल उपाध्याय ने जिन विचारों व सिद्धांतों की आधारभूमि पर राजनीतिक मानस बनाने का प्रयास किया, उस पर अमल के लिए आंतरिक-बाह्य स्तर पर योग्यता व दक्षता विकास में भी सदैव लगे रहे। तब संचार-संवाद के साधन इतने नहीं थे, फिर भी सुदूर क्षेत्रों में रहने वाला अदना-सा कार्यकर्ता पार्टी का स्टैंड किस विषय पर क्या होना चाहिए या होगा, पार्टी प्रवक्ता का क्या बयान हो सकता है - इससे अंतर्मानस के स्तर पर पहले से भलीभाँति अवगत रहता था। यह परंपरा उनके न रहने पर भी दशकों तक चलती रही; अराजक, दुर्भावनापूर्ण और सुविधानुसार बयान तब नहीं आते थे। नेतृत्व किसी प्रभावी राजनैतिक व वर्गीय-जातीय शक्तियों से विचारों व कार्यकर्ताओं के सौदे करने की सोच भी नहीं सकता था।

अब नेताओं-कार्यकर्ताओं के पास छोटे-बड़े मुद्दों एवं समस्याओं के समाधान की कोई मौलिक रूपरेखा नहीं है, न फिल्ड वर्क है और न होम वर्क, आगे-पीछे घूमने की परंपरा प्रभावी है। दीनदयाल जी और उनके साथियों ने बिल्कुल कम संसाधनों से जो करने का बीड़ा उठाया, वह आज अधिकाधिक संसाधनों के रहते भी नहीं हो पा रहा है। जैसे बिना सत्ता के बहुत कुछ नहीं हो पाता, ठीक वैसे ही सत्ता से सब कुछ नहीं हो जाता - इसी मिथ से निकलने के लिए दीनदयाल उयाध्याय और उनके कार्यदर्शन की जरूरत है।

सोलह साल पहले २५ सितंबर, २००० ई. को प्रथम दीनदयाल स्मृति व्याख्यान का शुभारंभ करते हुए उत्तर प्रदेश के तत्कालीन राज्यपाल आचार्य विष्णुकांत शास्त्री ने शिवओम अंबर की निम्न कविता के माध्यम से उन्हें श्रद्धांजलि दी थी। उसी से दीनदयाल उयाध्याय जी को पुनः स्मृत किया जा सकता है -

जो लोग समय का नाग नथते हैं, वृंदावन उनके पीछे चलता है।
गोवर्द्धन धारण करने वालों का, सारा गोकुल अभिनंदन करता है।।
बलिदानों के रथ की लीकें पड़तीं, संकल्प-सिद्धि की डोली आती है।
माथा चूमने जुझारू बाजे का, हर ऑगन से रंगोली आती है।।
चंदनी गीत की रचना के पहले, जो लोग लहू में लपट मिलाते हैं।
आखिर उनके लोहित हस्ताक्षर ही,नवयुग को परिचयपत्र दिलाते हैं।।
कोरे सिद्धांतों को दुहराने से, कब वसुंधरा का रूप सँवरता है?
आदर्श आचरण में जब ढलते हैं, तब कोई दीनदयाल उभरता है।